हम भीतर खोजें, तो धर्म का जन्म होता है। धर्म का जन्म मनुष्य के आंतरिक जीवन को जानने की जिज्ञासा से हुआ है। धर्म ने अनुभव किया है, पिछली पूरी सदियों में जिनका इतिहास ज्ञात है, अनुभव हुआ है- जब तक मनुष्य अपने से परिचित न हो, अपने को न जाने, अपनी भीतर की दुनिया में न उतरे, तब तक उसका जीवन संताप का और दुःख का जीवन होता है। तब तक वह कुछ भी करे- धन इकट्ठा करे, यश इकट्ठा करे, पांडित्य इकट्ठा करे, त्याग इकट्ठा करे; कोई भी बात उसे शांति और आनंद तक नहीं ले जा सकती है। सबकुछ करे लेकिन पाएगा कि दुःखी है और दुःख उसे घेरे है। सबकुछ कर ले, लेकिन पाएगा कि अंधेरा है, और अंधेरा छूटता नहीं। यह जो अंधी दौड़ चलती है बाहर के जगत में धर्म इस अंधी दौड़ से तुमको वापस लौटाना चाहता है और कहना चाहता है बाहर कितने ही चलो, कितनी ही यात्रा करो, लेकिन कहीं पहुंच नहीं सकोगे।

एक छोटी-सी कहानी आपसे कहूं--एक बच्चों की कहानी। बच्चों की कहानी की एक किताब है--'अलाइस इन वंडरलैंड', 'परियों के देश में अलाइस।' अलाइस नाम की लड़की है वो परियों के देश में गई। परियों के देश में जब वह पहुंची तो बहुत थक गई। जमीन से आकाश तक का रास्ता उसने तय किया। वह बहुत थक गई थी, सुबह का सूरज उग रहा था, जब वह परियों के देश में पहुंची। उसने देखा परियों की रानी दूर एक वृक्ष के नीचे बहुत-सी मिठाइयों का थाल सजाए हुई खड़ी है। उसका मन ललचाया। परियों की रानी ने कहा, 'आ जाओ'; उसने हाथ से इशारा किया।

अलाइस दौड़ने लगी फासला थोडा-सा है, उसने सोचा कि अभी दौड़कर पहुंच जाते हैं। वह दौड़ने लगी। दौड़ती गई, दौड़ती गई। सुबह का सूरज दोपहरी में बदल गया, लेकिन अलाइस ने आंख उठाकर देखा- फासला उतना का उतना ही था। उसने चिल्लाकर पूछा कि बात क्या है? मैं इतना दौड़ी, लेकिन तुम तक नहीं पहुंच पाई।

उस रानी ने कहा- दौड़ी चली आओ, पहुंच जाओगी। उसने आश्वासन दिया, उसने आशा बंधाई, अलाइस दौड़ती गई। सांझ होने लगी, वह थककर गिर पड़ी। पसीने से चूर, दिनभर की दौड़। उसने नीचे गिरकर कहा कि बात क्या है? क्या तुम्हारे परियों के देश में रास्ते पूरे नहीं होते, क्या कोई फासले समाप्त नहीं होते?

उस परियों की रानी ने हंसकर कहा किस दुनिया में फासले पूरे होते हैं। सिर्फ चलना होता है, पहुंचना नहीं होता। पूरे जीवन में हम चलते हैं आशा बांधकर कि कुछ मिलेगा, आनंद मिलेगा, शांति मिलेगी, जीवन की सार्थकता मिलेगी, हम चलते जाते हैं। और अंत में एक दिन हम पाते हैं कि हम धूल में गिर गए हैं और मृत्यु की अंतिम घड़ी निकट आ गई है और कुछ भी नहीं पाया। उतने ही अतृप्त, उतने ही अशांत। जिस दिन दौड़ शुरू की थी, जिस दिन दौड़ का अंत होता है; वहीं के वहीं पाए जाते हैं। यह जो मनुष्य की कथा है, यह जो व्यर्थ की दौड़ है; धर्म इस दौड़ से जगाना चाहता है।

धर्म कहता है यह दौड़ फिजूल है। ये दौड़ व्यर्थ है। कितना ही दौड़ो- कहीं पहुंचना नहीं होता। इसलिए जागें, यह धर्म चाहता है। और वहां चलें, जहां शांति और आनंद उपलब्ध होते हैं। इसलिए मैं कहता हूं धर्म कोई त्याग की बात नहीं है। धर्म कोई कष्ट की बात नहीं है। धर्म वस्तुतः आनंद की बात है। वह पूरे के पूरे परिपूर्ण आनंद को उपलब्ध करा देने की बात है। उसकी दृष्टि, उसका कोण, उसका विचार दर्शन यही है कि मनुष्य के भीतर उसकी जो चेतना है, उसकी जो सत्ता है; उस सत्ता से परिचित होना ही आनंद है। उस सत्ता से अपरिचित होना दुःख है।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा दार्शनिक हुआ शोपेनहार। सुबह अपने बगीचे में घूमने गया था। सुबह कुछ जल्दी नद्ध टूट गई; रात अभी घनी थी, वो बगीचे में पहुंच गया। दार्शनिक था; एकांत था। बगीचे में टहलते हुए खुद अपने से बातें करने लगा। माली ने देखा इस अंधेरी रात में इतनी जल्दी; अभी तो भोर भी नहीं हुई- कौन आदमी बगीचे में घुस आया। वह उसके करीब गया। लेकिन उसने देखा आदमी निश्चित ही पागल है, अपने से ही बातें कर रहा है। आधी रात बगीचे में घुस आना और फिर अपने से बात भी करना; यह आदमी पागल है। वो पास गया; डर के कारण बिल्कुल पास नहीं गया। थोड़ी दूर से ही पूछा--'महाशय आप कौन हैं?' शापेनहार ने कहा 'तुम भी खूब मज़ाक करते हो, यही मैं अपने से पूछता हूं। इसका उत्तर नहीं पाता। यही मैं अपने से पूछता रहा जीवनभर कि मैं कौन हूं? यही अब भी सोचता था, इसलिए जोर-जोर से बोलने लगा; यही पूछता था--'मैं कौन हूं', तो कोई उत्तर नहीं मिलता था और यही तुम पूछते हो।'

माली तो समझा होगा कि निश्चित ही पागल है। लेकिन शोपेनहार ने जो कहा वह हम कोई भी देखेंगे, तो पाएंगे कि शोपेनहार ने जो कहा ठीक कहा। शोपेनहार ने जो कहा ठीक कहा हम यही तो पूछते हैं 'मैं कौन हूं' और उत्तर नहीं मिलता है। हम पूछेंगे अपने से और पाएंगे कि कोई उत्तर नहीं मिलता। हम हैं, लेकिन कौन हैं३ यह पता नहीं। हम पैदा हुए हैं, लेकिन क्यों हुए हैं, कुछ पता नहीं। हम जिएंगे और कौन थे और क्यों जिए, ये पता नहीं होगा। और हम टूट जाएंगे और बिखर जाएंगे और लोग कहेंगे कि आदमी चला गया। और हमें पता नहीं होगा- हम क्यों थे, क्यों रहे, क्यों चले गए।

धर्म कहता है यह अज्ञान दुःखद है, यह अज्ञान तोड़ ही देना है। प्रत्येक व्यक्ति को यह जो जीवन मिला है, इस अज्ञान को तोड़ ही देना है। यह अज्ञान नहीं टूटेगा, तो हमारी समस्त क्रियाएं यांत्रिक होंगी, भ्रांत होंगी, गलत होंगी। मेरा देखना है, वह क्रिया जो यांत्रिक होती है, अज्ञान से जन्मी होती है; वही गलत होती है, वही पाप है। पाप का अर्थ बुरा काम नहीं, पाप का अर्थ चोरी नहीं है, पाप का अर्थ असत्य बोलना नहीं है। पाप का अर्थ है अज्ञान से उत्पन्न कर्म। अज्ञान से अगर हम जो करें, वह ठीक भी हो, तो वह भी बुनियाद में गलत होता है। अज्ञान से उत्पन्न जो भी होता है, वह गलत होता है। और अज्ञान से जो भी उत्पन्न है, वह यांत्रिक होता है। उसमें हम मालिक नहीं होते।

जैसे शायद आप सोचते होंगे कि हम क्रोध करते हैं, ऐसा सोचते होंगे। शायद सोचते होंगे कि हम प्रेम करते हैं। शायद सोचते होंगे- हम ऐसा करते हैं, वैसा करते हैं। यह भ्रांति है आपकी। जब तक आप जाग्रत नहीं हैं, तब तक आप कुछ भी नहीं करते, सब आपसे होता है। सब आपसे होता है। मैंने आपको गाली दी, आपके भीतर से क्रोध निकल आता है। यह आप क्रोध कर नहीं रहे हैं। मैंने बटन दबाई और बिजली जल जाती है। यह बिजली जल नहीं रही है, यह जलाई जा रही है। यह बिजली यह अहंकार छोड़ देती कि मैं जल गई, यह अहंकार छोड़ दे, क्योंकि यह जलाई गई है। मैंने एक बटन दबाई, अपमान किया, आपके भीतर क्रोध हो गया। इस क्रोध को आप साचें ना कि हमने किया है। आप क्या करेंगे? आप कुछ भी नहीं कर रहे; जब तक हम अज्ञान में हैं, तब तक हमारे भीतर बाहर की क्रियाएं प्रतिक्रियाएं पैदा करती हैं। तब तक मनुष्य कोई क्रिया नहीं करता; प्रतिक्रयाएं करता है। प्रतिक्रिया पाप है। जब तक मैं अपने स्वनिर्भर कोई कर्म न करने लगूं। जब तक बाहर की कोई चीज मुझसे कर्म पैदा करवाती है, तब तक मैं यांत्रिक हूं और अज्ञानी हूं।

बुद्ध के जीवन में एक घटना है। वे एक गांव के करीब से निकले। कुछ लोगों ने आकर उनका अपमान किया उनको गालियां दी, उनको बुरी बातें कहीं। जब वे गालियां दे चुके, बुद्ध ने पूछा- आपका काम पूरा हो गया हो, तो मैं जाऊं? वे लोग बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा- हम कोई काम करने आए थे। हमने अपमान किया, आपको कुछ कहना नहीं। बुद्ध ने कहा मैंने बहुत दिन से प्रतिक्रियाएं करना बंद कर दी हैं। मुझे जो करना

होता है, वो मैं करता हूं। तुम्हें जो लगे, तुम करो। तुम आए। कुछ लोग आते जो मुझे प्रेम करते हैं, तो वो मिठाई लाते, फूल लाते हैं, फल लाते; मैं उनसे कहता हूं- मेरा पेट भरा है, वो वापस ले जाते। तुम मुझे प्रेम नहीं करते, तुम गालियां लाए हो। मैं तुमसे कहता हूं, मैं नहीं लेता। कृपा करके वापस ले जाओ। गाली दे तुम सकते हो, लेकिन लेना मेरे ऊपर है। मैं लेता नहीं।

बुद्ध ने यह अद्भुत बात कही। बुद्ध ने कहा कि मैं गाली को लेने से इंकार करता हूं। और मुझे जो ठीक लगता है, वही मैं करता हूं। तुम्हारी गाली के कारण कुछ नहीं करता। यांत्रिक; सोये हुए मनुष्य, अज्ञान से दबे मनुष्य और ज्ञान के लोक में जाग्रत मनुष्य में एक ही फर्क है, जाग्रत मनुष्य जो भी करता है सचेतन होता है, यांत्रिक नहीं होता। सोया हुआ मनुष्य जो भी करता है यांत्रिक होता है, सोया हुआ होता है। इसलिए मैं नहीं कहता शांत हुए मनुष्य से कि तुम पाप मत करो, तुम बुराई मत करो, तुम झूठ मत बोलो। ये फिजूल की बातें हैं। जो आदमी यांत्रिक है, उससे यह कहना कि तुम प्रतिज्ञा करो कि झूठ नहीं बोलेंगे; फिजूल की बात है। प्रतिज्ञा और उसे दिक्कत देगी। एक और झंझट खड़ी हो जाएगी। झूठ तो बोलेगा ही, एक और झंझट खड़ी हो जाएगी। इसलिए सारी प्रतिज्ञायें फिजूल हैं। बेमानी हैं। एक ही करने जैसी बात है जो धर्म कहता है- वो ये कि यांत्रिक अज्ञान के जगत से चेतन जाग्रत लोक में जागो। अपनी यांत्रिकता के बाहर निकलो। यांत्रिकता के बाहर, अज्ञान के बाहर जो भी स्वरूप के ज्ञान में वापस लौट आता है उससे गलतियां और पाप होना अपने आप बंद हो जाते हैं। पापों को रोकने के लिए, बुराइयों को रोकने के लिए प्रतिज्ञाएं नहीं करनी पड़ती हैं, संकल्प नहीं करने होते हैं। संकल्प एक ही करना होता है कि मैं यांत्रिक सीमाओं के बाहर कैसे निकल जाऊं। अज्ञान के बाहर कैसे निकल जाऊं। ये जो अज्ञान का, अंधेरे का घेरा मेरे ऊपर है, इससे बाहर निकलकर मैं स्वरूप ज्ञान को कैसे पा लूं?

आज की संध्या मैं यह कहना चाहता हूं- ये स्वरूप ज्ञान कैसे पाया जा सकता है? और इतना मेरा मानना है कि जब तक यह स्वरूप ज्ञान न मिले, तब तक कोई आदमी धार्मिक नहीं होता है।

तब तक उसके नाम भर धार्मिक होते हैं। तब तक वह किसी मंदिर में जाकर सिर पटकता है या किसी मस्जिद में नमाज पढ़ता है। तब तक वह किसी गिरजे की घंटियां बजाता है या कोई किताब पढ़ता है। लेकिन यह सब बातें फिजूल हैं। इनका कोई मानी नहीं। बुनियादी मानी एक ही बात का है कि क्या हम यांत्रिक और अज्ञान लोक से जागने शुरू हुए हैं? कैसे हम जाग सकते हैं, कैसे हम आत्मज्ञान को पा सकते हैं? कैसे हमारे भीतर वह क्रांति घटित हो सकती है, जो हमें स्वरूप में प्रतिष्ठित कर दे। इस संबंध में थोडी-सी बात आपसे कही। इसके कहने के पूर्व इतनी बात जरूर हम जानते चलें, इतना आश्वासन हम जरूर जान लें कि अगर ठीक विधियां, ठीक साधना का बोध हमें उपलब्ध हो तो प्रत्येक व्यक्ति इसको पा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति में संभावना है। प्रत्येक व्यक्ति में पूरी संभावना है। वो अगर थोड़ी-सी दृष्टि उस तरफ ले जाए, तो पाने की घटना घट सकती है। इसमें कोई शक नहीं है। यह इसके पूर्व पाया गया है। हजारों लोगों ने हमारे मुल्क में, और हमारे मुल्क के बाहर; विभिन्न सदियों में, विभिन्न धर्मों में अपने स्वरूप को पाया है। एक मनुष्य ने पाया है, तो दूसरा मनुष्य भी पा सकता है, क्योंकि प्रत्येक दो मनुष्यों की आंतरिक क्षमताएं बराबर हैं। अगर बुद्ध ने पाया है, महावीर ने पाया है- तो मैं भी पा सकता हूं, आप भी पा सकते हैं। फर्क इतना ही है- हमें कभी पाने के लिए तीव्र जिज्ञासा और प्यास, एक महत्वाकांक्षा और एक जलती हुई महत्वाकांक्षा हमें नहीं पकड़ती और हम धीमे-धीमे मौत की तरफ सरकते रहते हैं।

पाया जा सकता है, लेकिन कैसे पाया जा सकता है? क्या है रास्ता, कहां है उलझन? पहली उलझन तो यह है कि हम इस भूल में है कि हम यह कर रहे हैं। हम यह भूल छोड़ दें, अभी हमसे कुछ भी नहीं हो रहा है।

अभी हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। अभी हम बिल्कुल मशीन की तरह चल रहे हैं। अगर अपने मन के भीतर आप झाकेंगे और देखेंगे और थोड़ा-सा विश्लेषण करेंगे, आप पाएंगे यह सब सिलसिला यांत्रिक हैं। कहीं बाहर से कुछ इकट्ठा होता है, भीतर कोई प्रतिक्रिया होती है। संस्कार जवाब देते हैं, घटना घट जाती है। फिर आप निर्णय करते हैं- अब क्रोध नहीं करूंगा; बार-बार क्रोध हो रहा है। फिर निर्णय करते हैं- क्रोध नहीं करूंगा और फिर क्रोध हो जाता है।

यह निरंतर यांत्रिकता चलती रहती है। खलील जिब्रान ने एक कहानी लिखी है। उसने एक कहानी लिखी है कि एक गांव के राजा के महल के पास एक आवारा लड़के ने एक पत्थर उठाकर फेंका। जब उस पत्थर को फेंका गया, तो उसने जो नीचे पड़े पत्थरों को देखकर कहा कि अच्छा मैं जरा आकाश की सैर को जाता हूं। जब ऊपर उठने लगा और महल की खिड़की से टकराया तो उसने खिड़की से कहा कि जो भी मेरे रास्ते में आता है, चकनाचूर हो जाता है। खिड़की का कांच टूट गया। पत्थर भीतर जाकर गलीचे पर गिरा। उसने गलीचे के पास पहुंचकर कहा- अब बहुत थक गए, बहुत उड़ान ली; अब थोड़ा विश्राम कर लें। मकान मालिक के नौकर ने देखा- पत्थर फेंका गया। वह आया और उसने पत्थर को उठाया और बाहर फेंक दिया। वह पुनः पत्थरों के उस ढेर में गिरा और वहां जाकर कहने लगा--राजमहल का बहुत सुख भोगा, लेकिन तुम्हारी याद आ रही थी, सो मैं तुम्हारे पास पुनः चला आया।

(आडियो में गैप)

जैसे वह सब यांत्रिक हुआ, लेकिन वह अपने अंहकार को तृप्त करता है कि मैं उड़ रहा हूं, मेरे रास्ते में जो आ रहा है, वह टूट रहा है। हम भी पूरे जीवन में यांत्रिक हैं और यांत्रिकता के बीच भी अपने अंहकार को तृप्त करते रहते हैं कि यह मैंने किया, यह मुझसे हुआ, यह मैं हूं। इस 'मैं' की तृप्ति को हम सारी यांत्रिकता को भूलकर तृप्त करते रहते हैं। इसलिए सारे धर्म कहते हैं कि जो अहंकार से युक्त है, वो कभी आत्मस्वरूप तक नहीं जा सकता है। मैं आपसे इतना जरूर कहता हूं कि अहंकार भ्रांत है। जहां नहीं होना चाहिए, वहां है। उस पत्थर का अहंकार जैसा भ्रांत था, वैसे हमारा अहंकार भी भ्रांत है। सामान्य मनुष्य से, सोये हुए मनुष्य से कुछ भी नहीं होता है। सभी यांत्रिक प्रक्रियाएं होती हैं। इसलिए धर्म कहते हैं- जो अहंकार से युक्त है, वह स्वरूप तक नहीं पहुच सकता। अहंकार को छोड़कर हम स्वरूप तक पहुचते हैं। अमृत तक पहुचते हैं। उस तक पहुंचते हैं, जो हमारे भीतर बैठा हुआ है।

एक छोटी-सी कहानी आपसे कहूं। यह कहानी मुझे बहुत मीठी, लगी, मुझे बहुत प्रिय लगी। मेरी बात इससे समझ में आ सकती है। एक काल्पनिक कहानी है- यूनान में एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ है। उस मूर्तिकार की अद्‌भुत क्षमता थी। वह जो मूर्ति बनाता और मूर्ति के पास सांस रोककर खड़ा हो जाता, तो पहचानना मुश्किल था कौन असली है, कौन मूर्ति है, कौन मूल है। उस चित्रकार की मृत्यु आई। उसने सोचा मौत को धोखा दे दें। अपनी ही 11 मूर्तियां बनाई और अपने ही बड़े कक्ष में उनको खड़ा किया। और जब मौत आई और उसके घर में प्रवेश किया। मौत घर में आई, उसने देखा वहां एक जैसे बारह लोग हैं, बहुत मुश्किल है, किसको ले जाए। उसने वापस प्रभु से लौटकर कहा कि वहां बारह एक जैसे लोग हैं, किसको लाऊँ। प्रभु ने कहा मैं तुम्हें एक सूत्र बता देता हूं, जो असली आदमी है पहचान लिया जाएगा। मौत को प्रभु ने एक सूत्र दिया इस सूत्र को लेकर मौत वहां वापस आई। उस सूत्र का चित्रकार को कुछ पता नहीं था, लेकिन आपको वह सूत्र बताता हूं, और पता हो जाएगा तो मौत से बचा जा सकता है। वो सूत्र लेकर मौत वहां गई। उस कमरे के भीतर जाकर एक नजर

फेंकी, चारों तरफ देखा। कहा- बहुत सुंदर मूर्तियां बनी हैं, लेकिन एक छोटी-सी भूल रह गई है। और जैसे ही उसने कहा एक छोटी-सी भूल रह गई है, फौरन चित्रकार के मुंह से निकला 'कौन-सी भूल।' मौत ने कहा 'यही तुम नहीं भूल सकते कि तुम हो' यही कि तुम नहीं भूल सकते कि तुमने बनाया, यही कि तुम नहीं भूल सकते कि तुम सृष्टा हो, यही कि तुम ''मैं'' को विसर्जित नहीं कर सकते। यह जो ''मैं'' है, यह जो भ्रांत केन्द्र है हमारा, यह हमें अपने असली केंद्र पर जाने से रोकता है। यह भ्रांत केंद्र ही मृत्यु के मुंह में ले चला जाता है। इस भ्रांत केन्द्र से हम जब तक हम अपने को एक समझे हुए हैं, तब तक हमें मृत्यु का भय होगा। मृत्यु का डर होगा। मरने की पीड़ा और सुरक्षा की चिंता होगी। जिस दिन हम इस भ्रांत 'मैं' को छोड़ देते हैं और नीचे उतरते हैं। और असली 'मैं' पर पहुंचते हैं, उसी दिन मृत्यु समाप्त हो जाती है। उसी दिन पाया जाता है कि हम तो निरंतर अमृत से संयुक्त हैं। हम तो मर ही नहीं सकते थे ऐसे कुछ थे। हमारा कुछ नष्ट नहीं हो सकता था। हमारा तो कुछ विनष्ट नहीं हो सकता था। कुछ ऐसे थे हम। पुराने ग्रंथ कहते हैं अमृतस्य पुत्रा। वे कहते थे तुम अमृत के पुत्र हो। पुराने ग्रंथ कहते हैं, पुराने ऋषि कहते हैं, पुराने तीर्थंकर कहते हैं कि तुम विनष्ट नहीं हो सकते हो। कुछ भी हो जाए तुम्हारे भीतर जो चेतना है, वह नष्ट नहीं हो सकती। लेकिन इस चेतना तक जाने के लिए अहंकार को त्यागना होगा। अहंकार क्या है? हमारा अहंकार क्या है? थोड़ा हम देखें तो हम पाएंगे हमारी स्मृतियां, हमारे विचार, हमारी आकांक्षाएं, हमारी वासनाएं, इनका इकट्ठा कुंज हमारा अहंकार है। अगर हम सारी आकांक्षाओं को, अपनी सारी वासनाओं को, अपने सारे विचारों को अलग कर लें, तो हमारे भीतर अहंकार का क्या बचेगा? अहंकार एक गांठ है, जो इन सारी चीजों से मिलकर बनी है। इनको हम खोल लें और अलग कर लें, तो पाएंगे वहां गांठ के नाम पर कुछ बाकी न रहा। रस्सियां खोल ली गई हैं और गांठें समाप्त हो गईं। विचार, आकांक्षाएं और वासनाएं, स्मृतियां इन सबका इकट्ठा पुंज हमारा अहंकार है। इस अहंकार को हम कैसे छोड़ें। अगर हम स्मृतियों, आकांक्षाओं और विचारों के पीछे चलें, तो अहंकार टूट जाता है।

यह मैं एक विज्ञान की बात कर रहा हूं- उस मूलभूत विज्ञान की बात कह रहा हूं, जिस पर सारे धर्म खड़े हुए हैं। इसको खोलने से वर्धमान महावीर हो गए थे, इसको खोलने से सिद्धार्थ बुद्ध हो गये थे। इसको खोल लेने से कोई भी उन्हीं जैसा हो सकता है। कैसे खोलें। अपने भीतर चलते हैं, तो पाते हैं कि यही यही है, अपने भीतर चलते हैं, तो पाते हैं स्मृतियां हैं, कल्पनाएं हैं, भविष्य की आकांक्षाएं हैं। और इनमें टक्कर हो जाती हैं और इनमें रुकावट हो जाती हैं। इन्हीं से टकराकर हम वापस बाहर लौट आते हैं। इनके भीतर जाने के लिए, इनके भीतर उतरने के लिए कुछ करना होगा। कुछ आवश्यक है कि इनके भीतर जाने के लिए हम करें। इस करने का नाम ध्यान है। इस ध्यान करने से ही स्वरूप का बोध, स्वरूप की प्राप्ति होती है। हम क्या करते हैं। अगर कोई हमसे कहे ध्यान करो, तो हम मन के साथ जबरदस्ती दमन करते हैं। हम मन से लड़ते हैं। हम चाहते हैं कि यह विचार न हो, वह विचार न हो। पंडित हैं, प्रवचनकार हैं, उपदेशक हैं; वे कहते हैं बुरे विचारों से बचो। वे कहते हैं भले विचारों पकड़ो, बुरे विचारों को छोड़ो। वे बिल्कुल गलत बात करते हैं। वे कुछ ऐसा कहते हैं कि रात को खत्म कर दो, दिन-दिन को बचा लो। वे कहते हैं अंधेरे को बिल्कुल छोड़ दो, बस प्रकाश-प्रकाश बचा लो। इस संघर्ष में जब हम बुरे विचारों को निकालने की कोशिश करते हैं और भले विचारों को रोकने की, तो एक तनाव पैदा होता है और तनाव अशांति पैदा करता है। इसलिए मैं कहता हूं मूल ध्यान योग का संबंध बुरे विचारों को निकालने से नहीं हैं, भले विचारों को रोकने से नहीं है। मूल योग का संबंध समस्त विचारों से मुक्त होने से है। और समस्त विचारों से मुक्त होने का अर्थ विचारों से संघर्ष, विचारों से लड़ना, विचारों के साथ एक तनाव की स्थिति पैदा करना नहीं है, बल्कि आहिस्ते से विचारों के बाहर खिसक जाना है।

मैं इस कक्ष के भीतर हूं। मैं इस कक्ष के बाहर जाना चाहता हूं। मैं जितना ही यहां के खंभों से और यहां की जमीन से लड़ने लगूंगा; जब तक लड़ता रहूंगा, तब तक इस कक्ष से बाहर नहीं जा सकता। और जितना मैं लडूंगा, उतना मैं थकूंगा। जितना मैं थकूंगा, उतनी मेरी शक्ति कम होगी। और फिर बाहर जाना मुश्किल होता चला जाएगा। बेहतर है कि मैं शक्ति का जरा-सा भी अंश खोए बिना, चुपचाप बिना लड़े कक्ष से बाहर हो जाऊं। मन के बाहर हो जाना संभव है। बिना संघर्ष के संभव है। मन के बाहर हो जाना ही ध्यान है। यह ध्यान एकाग्रता नहीं। किताबें हैं, और जो नहीं जानते वे कहेंगे ध्यान का मतलब एकाग्रता होता है। किसी से पूछेंगे, वे कहेंगे ध्यान का मतलब मन को एकाग्र करना। ध्यान का मतलब मन को एकाग्र करना नहीं है। एकाग्रता बिल्कुल दूसरी बात है, ध्यान बिल्कुल दूसरी बात है। एकाग्रता चित्त की शक्ति है। चित्त की शक्तियां बिखरी हुई हैं, उनका इकट्ठा करना एकाग्रता है। ध्यान चित्त के बाहर निकल जाना है। ध्यान चित्त की शक्ति नहीं है, चित्त की मुक्ति है। ध्यान चित्त के भीतर नहीं होता, चित्त के बाहर हटने से होता है। चित्त के बाहर हम कैसे हटें, यह असली प्रश्न है? बुनियादी प्रश्न एक है- चित्त के बाहर जाना कैसे हो? यह हो जाए, हम अपने स्वरूप तक पहुंच जाते हैं। मनुष्य संसार में नहीं भटका है। मनुष्य चित्त में भटका है, चित्त ही संसार है। आपको मैं नहीं देखता हूं, आपकी तस्वीर मेरे चित्त पर बनती है, उसको देखता हूं।

मैं धन को प्यार करूं, मुझे धन देखने को नहीं मिलता। आज तक किसी आदमी ने धन नहीं देखा। आज तक किसी आदमी ने स्त्री नहीं देखी, आज तक किसी आदमी ने मकान नहीं देखे। इस भ्रांति में मत पड़ना कि मकान दिखाई पड़ रहा है। मकान का एक चित्र बन रहा है आंख के भीतर, और वह चित्र हमारे चित्त पर है, उसे हम देख रहे हैं। इस मकान को हम देख नहीं सकते। आंख बंद कर लें, मकान नदारद हो जाता है। आंख बंद करते से ही वह जो चित्र बन रहा था चित्त पर, वो नहीं बनता। उसी चित्र को हम देख रहे हैं। हम चित्रों की दुनिया में है। इस चित्रों की दुनिया को संसार कहा जाता है। आज तक किसी आदमी ने असली चीज नहीं छुई है। मैं इस डंडे को छू रहा हूं, यह गलती है कहना कि मैं डंडे को छू रहा हूं। मस्तिष्क तक डंडा नहीं पहुंच रहा है। मेरे हाथ के स्नायु डंडे को दबाव दे रहे हैं। इन स्नायुओं से पीछे की शिराएं प्रभावित हो रही हैं। उन शिराओं का एक अंग यहां मस्तिष्क को खटका दे रहा है। अभी खटके का मुझे पता है, उसी खटके को मैं डंडा कह रहा हूं। आज तक किसी आदमी ने बाहर की कोई वस्तु न तो छुई है, न देखी है और न छू सकता है, और न देख सकता है।

हमारा पूरा संसार हमारे चित्त के भीतर घिरा हुआ है। उस चित्त के भीतर संवेदनाएं इकट्ठी हैं और उन्हीं के बीच हम घिरे हुए जी रहे हैं। इस चित्त के बाहर निकल जाना संसार के बाहर निकल जाना है। चित्त के बाहर निकल जाना संन्यास है। घर-द्वार छोड़ देने का नाम संन्यास नहीं है। घर-द्वार है ही नहीं, तो छोड़ेंगे कहां। धन-संपत्ति को, पत्नी को छोड़ देना संन्यास नहीं है। वो बाहर जो चीजें हैं, वह कहीं है ही नहीं। भीतर चित्त पर जो चित्रों का प्रवाह बन रहा है, उस प्रवाह को छोड़ देना संन्यास है। उससे मुक्त हो जाना मुक्ति है। कैसे मुक्त होंगे? मैंने कहा- विरोध से, संघर्ष से मुक्ति नहीं है। फिर कैसे मुक्ति है? मेरा अपना जानना यही है और समस्त योगों की बुनियादों के पीछे छिपी बात यही है- इन विचारों, इन आकांक्षाओं और वासनाओं को अगर हम शांत होकर सिर्फ देखना शुरू कर दें, तो मात्र इनके दर्शनों से मुक्ति हो जाती है।

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक हैं सी. एम. जोड, वे कुछ दिनों पहले मानसिक रोग से पीड़ित, बीमार हुए। उन्होंने एक मनोवैज्ञानिक से सलाह ली कि मैं क्या करूं? मनोवैज्ञानिक ने कहा कि मेरी प्रयोगशाला में आएं, मैं आपकी जांच करूंगा। सी.एम. जोड उसकी प्रयोगशाला में गए। मनोवैज्ञानिक ने उन्हें एक पर्दे के पास लिटाया और फिर पर्दे के दूसरी तरफ बैठ गया। उसने कहा अब आपके मन में जो भी विचार आते हों, कृपया

उन्हें बोलना शुरू कर दें। सी.एम. जोड ने लिखा है कि पहली दफा मैंने अपने मन के भीतर देखा, मैंने शांति से देखा कि कोई विचार आए, तब मैं उस विचार को बताऊं। तब मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने पहली दफे अपने मन के भीतर देखा, शांति से देखा, कोई विचार आए। उन्होंने पाया कि कोई विचार नहीं आ रहा। आप भी देखें शांति से मन के भीतर। जरा आंख भीतर मोड़ें और देखें कि क्या कोई विचार आ रहा है? और अचानक आप पाएंगे- रास्ता खाली और निर्जन है, वहां विचार नहीं आ रहे हैं।

विचार मन पर आते इसलिए हैं कि हम वहां उपस्थित नहीं हैं। हमारी उपस्थिति विचारों को समाप्त कर देती है। भीतर उपस्थित होना है, भीतर खड़े होना है, भीतर पहुंचना है। हमारा पहुंचना मात्र विचारों को हटा देता है। कुछ चोर अंधेरे घर में आते हैं और प्रकाश जले और मालिक भीतर बैठा हो तो चोर कमरे के भीतर नहीं आते। प्रकाश जले और मालिक भीतर खड़ा हो, विचार भी फिर मन के भीतर नहीं आते। और मन विचारों से खाली हुआ कि विचारों से मुक्त हुआ। एक बार मन विचारों से मुक्त हो जाए, तो अद्‌भुत शांति और आनंद उपलब्ध होता है और जो दर्पण उत्पन्न होता है, उस दर्पण में आपका साक्षात्कार होता है। उसी दर्पण में स्वरूप का बोध होता है।

उसी में जाकर मैं जान पाता हूं कि 'मैं कौन हूं।' और जिन्होंने जाना उन्होंने कहा कि अद्‌भुत! हम तो प्रभु ही हैं। जिन्होंने जाना उन्होंने कहा कि हम तो ईश्वर का ही अंश हैं। हम तो ईश्वर के ही स्वरूप हैं। जिन्होंने जाना उन्होंने कहा हम तो सत चित्त आनंद हैं, हम तो आत्मा हैं। यह आत्मा और अस्तित्व और ब्रह्म और ईश्वर; यह जो भीतर जाना गया है, उसके नाम हैं। और जब तक हम इससे संयुक्त न हो, तब तक दुःख और पीड़ा से हमारी मुक्ति नहीं हो सकती। हम भटकेंगे और पीड़ा में चलेंगे। और एक जन्म, दो जन्म, पचास जन्म, कितने ही जन्म लें, जन्म से कुछ अर्थ नहीं होता, जन्म का कोई अर्थ नहीं हो सकता, उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। एक ही उपयोगिता है और वह यह है कि हम किसी क्षण में जाग जाएं। अपने भीतर उतरें, अपने भीतर डुबकी लें और उसको देखें। जैसे ही हम देख पाएंगे, वैसे ही दुःख और संताप, पीड़ा और बाहर की स्थिति से पैदा हुआ तनाव और अशांति समाप्त हो जाती है।

इसलिए मैं कहता हूं धर्म आनंद की घटना है, आनंद की क्रांति है। मुझसे लोग पूछते हैं कि क्या यह बात इतनी सरल है कि कोई भी कर ले। और मैं कहता हूं कि यह बात सरल है और कोई भी कर सकता है। हम नहीं कर पाते, इसीलिए कि हमने भ्रांति से समझ रखा है। इस भ्रांति ने हमें बहुत रोका है और स्थगित करने को बहुत मजबूर किया है। स्थगित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ठीक से हम जानें। बात इतनी सरल है। जो हमारे भीतर मौजूद ही है, उसको पाना कठिन नहीं हो सकता। जो मेरे घर में ही रखा है, उसे पाना कठिन नहीं हो सकता। केवल वहां पहुंचकर और केवल जाननेभर की बात है।

चीन की एक घटना आपको बताता हूं। चीन में एक साधु हुआ है लिंची। एक सांझ को ऐसा हुआ कि एक नया साधु लिंचि के घर मिलने गया। सांझ का दीपक जल गया था। लिंचि के पास जब नया साधु गया, तो लिंचि ने पूछा महाशय- आपका नाम? उसने कहा मेरा नाम लिंगतून। लिंगतून का चीनी भाषा में अर्थ होता है सर्वव्यापी प्रकाश। लिंचि थोड़ा मज़किया था, उसने एक मजाक किया, मीठा मज़ाक किया। उसने कहा 'अच्छा तो आप सर्वव्यापी प्रकाश हैं, तो कृपा करके इस लालटेन में प्रवेश कर जाएं।'

यह भी कोई बात हुई। उसने अपना नाम बताया कि मैं सर्वव्यापी प्रकाश हूं, और लिंचि ने कहा कि आप कृपा करके लालटेन में प्रवेश कर जाएं। और आप कल्पना नहीं कर सकते--लिंगतून ने क्या उत्तर दिया--लिंगतून ने कहाः 'आई एम अलेडी इनसाइड।' उसने कहा मैं उसके भीतर ही बैठा हूं। यह बड़ा अजीब-सा उत्तर था।

उस साधु ने जो उत्तर दिया उसमें यह बात छिपी है। वे यह नहीं कहते कि आत्मा को पाया जाता है, वे यह नहीं कहते कि आत्मा हमारी कोई उपलब्धि है। वे कहते हैं हम तो उसमें बैठे हुए ही हैं। उसे पाना नहीं है, केवल इतना जानना है कि हम वहां बैठे ही हुए हैं, वह हमारा स्वरूप है। जो हमारा स्वरूप है, जहां हम बैठे ही हुए हैं, जहां हम खड़े हैं, जो हमारा जीवन है, उसे पाना कठिन नहीं हो सकता। मेरा कहना है संसार पाना कठिन है, क्योंकि आज तक कोई संसार को नहीं पा सका है। लेकिन स्वरूप पाना कठिन नहीं है, क्योंकि स्वरूप का अर्थ है कि वह हममें बैठा है। हम कहीं भी चले जाएं, वह हमारे साथ है। हम नर्कों की यात्रा करें, वह हमारे साथ है। हम अंधेरों में उतर जाएं, वह हमारे साथ है। वह हमारे साथ है। और जिस दिन हम आंख फेरेंगे, जिस दिन हम भीतर झांकेंगे, उसे उसी दिन पा लिया जा सकता है। वो तभी तक नहीं पाया गया है, जब तक हमने निश्चय नहीं किया, और संकल्प नहीं लिया, और विचार नहीं किया कि उसे पा लेंगे। जब तक प्यास और आकांक्षा उसे पाने की पैदा नहीं हुई, तभी तक हम उससे दूर, उससे पराए हैं और उससे अलग हैं। जिसको वह प्यास, जिसको वह संकल्प, जिसको वह महत्वाकांक्षा पैदा हो जाती है, वह उसे पा लेता है। यह पा लेना सिर्फ शब्द में कहना है, असल में वो पा लेता है कि हम वही हैं। और यह भ्रांति दूर हो जाती है कि हमने अपने को दरिद्र समझा है। यह बात वह मूलतः समझ लेता है।

जब भारत का एक साधु रामतीर्थ अमेरिका गया। रामतीर्थ अपने आपको बादशाह कहते थे। दो लंगोटी उनके पास थी, लेकिन वे अपना नाम लिखते थे राम बादशाह। आखिर अमेरिका में किसी ने पूछ ही लिया कि महाशय- देखने में आप फकीर मालूम होते हैं, अपने को बादशाह कैसे कहते हैं? राम ने हंसकर कहा पहले मैं पागल था अपने को फकीर समझता था। जब मैं अपने भीतर गया, तब पाया अजीब पागलपन था- मैं तो बादशाह ही हूं, मैं सदा से मालिक हूं, मैं सदा से आनंद का अधिकारी हूं, गलती से जैसे सपने में अपने को भिखारी समझा है, वैसा समझ लिया था। इससे दुःखी और पीड़ित था।

हम स्वप्न में हैं, यांत्रिक स्वप्न और अंधेरे में है और पीड़ित और दुःखी हैं। उन लोगों ने जिन्होंने साधारण लोगों को समझाया तुम पापी हो, तुम बुरे हो, तुम्हारे कर्म बहुत बुरे हैं, उन्होंने दुनिया के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया है? किसी से यह कहना कि तुम पापी हो, उसे आनंद के लोक तक जाने से रोकना है। अगर यदि यह विश्वास बैठ जाए, तो सच में आनंद तक पहुंचना कठिन हो जाता है। कोई पापी नहीं है। और किसी चेतना ने कभी पाप नहीं किया। आप पाप कर भी नहीं सकते हैं। पाप करना असंभव है। यह भ्रांति छोड़ दें कि पाप किए हैं और पाप कर रहे, और पाप छोड़ना है। कुल एक ही पाप है। और वह पाप है आत्म अज्ञान। और कुल एक ही पुण्य है और वह पुण्य है आत्मज्ञान। और बाकी बातें सब फिजूल हैं। बाकी सब बातें फिजूल हैं, उनका कोई अर्थ नहीं है। एक ही पाप से फिर सारा जीवन पापग्रस्त हो जाता है। और एक ही पुण्य से फिर सारा जीवन पुण्य से भर जाता है। तो मैं बहुत-सी बातें नहीं करता। एक ही बुनियादी बिंदु की बात करता हूं- इस आत्म अज्ञान की यांत्रिकता से आत्मज्ञान की चेतना जाग्रति में जागें। महावीर ने यही बार-बार कहा है--उन्होंने कहा विवेक को पैदा करो, सम्यक विवेक को पैदा करो। जागो, सम्यक ज्ञान को पैदा करो।

ये सारे लोग यही चिल्लाते रहे। और हम भी कुछ अजीब सोने वाले हैं। चिल्लाने वाले चिल्लाते-चिल्लाते सो जाते हैं, लेकिन हमारी नद्ध नहीं टूटती। हमारी नद्ध चलती चली जाती है। और हम कुछ ऐसे अजीब सोने वाले हैं कि हम धीरे-धीरे उन चिल्लाने वालों को भी सुला लेते हैं कि आ जाओ, तुम भी सो जाओ। उनके लिए किताब लिख देते हैं, उनके लिए मूर्ति बना लेते हैं। हम धीरे-धीरे उनको भी सुला लेते हैं, ताकि हमारी नद्ध में बाधा न दें। ताकि हमारी नद्ध में उपद्रव न करें। फिर हम उनके मंदिर बनाते, उनकी पूजा करते, उनके संप्रदाय

खड़े करते हैं। और धीरे-धीरे नद्ध घनी हो जाती है। और बजाय इसके कि जगाने वाला हमको जगाता, हम उसके नाम को, उसके विचार को धीरे-धीरे सुला लेते हैं।

यह भ्रांति है, यह गलती है। इस गलती के कारण सारी दुनिया में धर्म इतना बड़ा कर सकते थे, वह नहीं कर पाए। आज भी कर सकते हैं, लेकिन नहीं कर पा रहे। मेरा आपसे यही कहना है कि धर्मों के बाह्य क्रियाकांड, उनकी बाह्य सोची हुई बातों, और उनके पूजा, व्यवस्था और विधान में न पड़कर आंतरिक जीवन को बदलने का प्रयास करें। उस प्रयास से ही आपको वह उपलब्ध होगा, जिसे उपलब्ध करने के लिए जीवन मिला है।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने आपसे कही। इन थोड़ी-सी बातों में भी बहुत कुछ मैं आपसे कह रहा हूं। बीज बहुत छोटे होते हैं, पड़ जाएं, बहुत बड़े पौधे में परिणत हो जाएंगे। बीज बहुत छोटा होता है, पड़ जाए, ठीक जमीन मिल जाए, बहुत बड़ा वृक्ष बन जाता है। ज्ञान, विचार और दर्शन की बातें बहुत छोटी हैं। पश्चिम के एक बहुत बड़े इतिहासकार एच जी वेल्स कहते थे एक छोटे से पोस्टकार्ड पर मनुष्य ने जो भी ज्ञान की बातें खोजी हैं, वे लिखी जा सकती हैं। मैं तो कहता हूं एक छोटा पोस्टकार्ड भी बहुत बड़ा है। ज्ञान की तो एक ही बात है। कुल एक छोटी-सी बात है और वह है : अपने को जानना।

वह है : अपने को जानना।

एक छोटी-सी बात है बाकी फिर सारा विस्तार इसी का है।